संपादक

गुरु गोविंद सिंह : तूलिका और तलवार के संधि-पुरुष

सिख पंथ के दसवें गुरु गोविंद सिंह ने शस्त्र एवं शास्त्र, कलम और कृपाण, संतत्व एवं वीरत्व का अपने जागतिक जीवन-व्यवहार में जैसा समन्वय प्रस्तुत किया, वह अनुपम है। सन् 1666 ई. में पाटिलीपुत्र में अवतीर्ण गोविंद राय ने आठ-नौ वर्ष की आयु में पंजाब को अपना कर्म-केंद्र बनाया था। जब उनके पिता सिख पंथ के नवम् गुरु तेगबहादुर ने दिल्ली के चांदनी चौक में धर्म की बलिवेदी पर अपने प्राणों की आहुति दी, तब गोविंद राय की उम्र महज नौ साल थी। अल्पायु में ही गुरु-गद्दी का दायित्व उन्होंने बखूबी सँभाला, किंतु सुरक्षित शक्ति-संचय के लिए अगले बीस वर्षों तक हिमालय की पहाड़ियों में रहकर आत्मसाधना की। 1699 ई. में खालसा पंथ की स्थापना के साथ 'गुरु ग्रंथ साहिब' को छोड़कर अन्य बाह्य वस्तुओं की पूजा-अर्चना को निषिद्ध करते हुए आह्वान किया कि प्रत्येक खालसा विजय के लिए बना है - 'वाह गुरुजी का खालसा, वाह गुरुजी की फतेह।' सभी खालसा पंथियों के नाम के साथ 'सिंह' लगाना अनिवार्य हो गया। फिर गोविंद राय भी गोविंद सिंह हो गए। वैसे भी 'सिंह' उन्हें बहुत प्रिय था, तभी उनकी कृतियों में देवासुर संग्राम में जहाँ भी देवी की विजय होती है, वहाँ शेर न केवल उपस्थित है, बल्कि विजय में उसका अहम योग भी है। दूसरे शब्दों में, शेर की भूमिका के कारण दैत्य विजित होते हैं - 'म्रोनित बिंदु भये इकट्ठे वर चंडि प्रचंडि को घेरि लियो है/चंडि और सिंह दुहू मिलि कै सभ दैत्यन को दल मार दियो है।' सात्विक शक्तियों द्वारा अंततः दुष्ट शक्तियों के विनाश हो जाने के प्रति गुरु गोविंद सिंह के मन में अटूट विश्वास था, जो उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में बारंबार प्रकट हुआ। मध्य काल अंधकार का युग था। समाज आत्मकुंठा एवं कुरीतियों से जर्जर हो रहा था, जिनसे केवल बाह्य स्तर पर लड़कर निजात नहीं पाया जा सकता था, वरन् व्यापक स्तर पर समाज के अंतर्मानस में व्याप्त अंधकार के उच्छेदन के लिए चतुर्दिक प्रयास की आवश्यकता थी। इसका गुरुत्व भार उन्होंने अपने कंधे पर लिया, यद्यपि अपने समय की सिर उठाती आततायी शक्तियों का मुकाबला शस्त्र शक्ति द्वारा भी किया, बाह्य अनाचारों-अत्याचारों को समाप्त करने के निमित्त उन्होंने कुशल योद्धा की भाँति दर्जन भर सीधे युद्ध किए; तो दूसरी ओर, ओजस्वी भाव-वाणी द्वारा दृढ़ता, वीरता व उत्साह का संचार किया, साहित्यिक-सांस्कृतिक क्षेत्रों में उपदेशात्मक जागरण द्वारा नवचेतना निर्माण का सुकार्य किया। इस दरम्यान उनके चारों पुत्र बलिदान हुए, दो युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए और दो को अंधधर्मावलंबियों ने जिंदा चिनवा दिया; फिर भी वे विचलित नहीं हुए। केवल बयालीस वर्ष के अल्प जीवनकाल में उनके मन में यही गूँजता रहता कि शुभ कर्म करने से कभी डगमगाऊँ नहीं, इस निमित्त दुश्मनों से लड़ते हुए अपनी जीत सुनिश्चित कर सकूँ। दैवी शक्तियों से सदा यही कामना, प्रेरणा और प्रोत्साहन प्राप्त हो कि जीवन के अंतिम समय तक अपने उसूलों के लिए जूझते हुए मर सकूँ -

बर देहि सिवा नित मोहि इहै, सुभ करमन ते कबहूँ न टरौं।
न डरौं अरि सौं जब जाइ लरौं, निसचै करि आपनि जीत करौं।।
अरु सिख हौं आपने ही मन कौं, इहि लालच हौं गुन तौ उचरौं।
जब आयु की औधि निदान बनै अंत ही रन मैं तब जूझि मरौं।।

शुभ कर्म केवल धर्मयुद्धों तक सीमित नहीं होता, वरन् बहुस्तरीय होता है, हालाँकि युद्ध भी एक शुभ कर्म है विशेषकर गुरु गोविंद सिंह के लिए; तभी वे कहते हैं कि 'अउर बासना कुछ नहीं, धरम जुद्ध के चाइ।' इसलिए धर्म को सत्कर्म से और लोकोत्तर को लोक में उतारकर अपनी निर्गुण वाणी को साकारता दी और उसे जीवन-जगत के दैनंदिन व्यवहार का विषय बनाया। 'चौबीस अवतार' के एक भाग 'कृष्णावतार' में भी आगे वे यही दुहराते हैं कि हे करुणानिधि! तुमसे किसी अन्य चीज की अभिलाषा नहीं, केवल मानवता के दुश्मनों से लड़ते और धर्मस्थापना हेतु सतत संघर्ष करते मरण का वरण हो जाए - यही सद्दिच्छा है -

सस्त्रनसौं अति ही रन भीतर जूझ मरौं कहि साच पतीजै।
संत सहाइ सदा जग माँहि कृपा करि स्याम इहै बर दीजै।।

बृहत्तर संघर्ष-संग्राम का महत उद्देश्य धर्म की स्थापना होता है। 'धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे' और 'जब जब होहि धरम के हानि, बाढ़ै असुर अधम अभिमानी; तब-तब हरि धरि विविध शरीरा, हरहूँ कृपानिधि सज्जन पीड़ा' के अनुरूप गुरु गोविंद सिंह ने भी अपने प्रादुर्भाव का प्रयोजन साधुओं के परित्राण, दुख-क्लेशों का निवारण और दुष्टों का समूल संहार बताया -

हम इह काज जगत मो आए। धरम हेत गुरदेव पठाए।।
जहाँ जहाँ तुम धरम विचारो। दुष्ट दोखियन पकरि पछारो।।
यही काज धरा हम जनमम। समझ लेहु साधु सभ मनमम।।
धरम चलावन संत उबारन। दुष्ट सभन को मूल उपारन।।

धर्मयुद्ध दैत्यों, विधर्मियों, पापियों से होता है और अनवरत चलता है। अगर एक-दो बार लड़कर छोड़ दिया जाए तो इसे दुबारा पनपते देर नहीं लगती। यह दुनिया का शाश्वत नियम है। इसलिए अविराम धर्मयुद्ध की पुकार दसवें गुरु की रचनाओं में सर्वत्र है। ऐसे पौराणिक प्रसंगों को अपनी कृतियों का वर्ण्य विषय बनाया, जो इस कार्य के लिए अनुप्रेरक सिद्ध हो सकते थे, बीज-भूमि का

सिंचन कर सकते थे। उनकी समग्र वाणी 'दशम गुरु ग्रंथ साहिब' में संकलित है, जिसका मतलब है कि 'दसवें गुरु गोविंद सिंह द्वारा रचित ग्रंथ'; यद्यपि इसमें उनकी सोलह रचनाओं के अलावे अन्य प्रमुख संतों के वचन भी सम्मिलित हैं। सोलह में से एक 'वार श्री भगौती जी दी' पंजाबी में और एक अन्य 'जफरनामा' फारसी में है, जबकि बाकी सब ब्रजभाषा हिंदी में हैं। वहाँ सप्तसिंधु को अपनी तपस्थली बनाते हुए उन्होंने स्वयं को महाकाल या अकाल पुरुष की संतान घोषित किया है - 'सर्वकाल है पिता हमारा, देवि कालका मात हमारी।' इस प्रकार सर्वकाल निराकार परमसत्ता है तो कालका साकारऔर शत्रुसंहारक हैं, लोक का उद्धार करने में सक्षम हैं -

तारणि लोक उधारणि भूमिहि दैत्य संहारणि चंडि तुही है।
कारण ईस कला कमला हरि अद्रि सुता जहिं देखों उही है।।

यही कारण है कि जब कभी देवताओं का सिंहासन छिनता है, असुर उन्हें प्रताड़ित करते हैं और सुर भयाक्रांत होते हैं तो दिव्य-प्रचंड शक्तिधारिणी देवी चंडी की शरण में अपनी फरियाद लेकर जाते हैं - 'करी है हकीकत मालूम खुद देवी सेती, लिया महिषासुर हमारा छीन धाम है/कीजै सोइ बात मातु तुमको सुहात सब, सेवक कदीम तकि आए तेरी साम है।' दैन्य पर द्रवीभूत होकर देवी देवताओं को सदैव उबारती हैं। वस्तुतः सत्व की ताकत और धर्म की ध्वजा के साथ अस्त्र-शस्त्र पर गुरु गोविंद सिंह का अखंड भरोसा था - 'या कलिकाल मै सभकाल कृपान के, भारी भुजान को भारी भरोसो।' बाहुबल और कृपाण पर भरोसा शास्त्रोचित है, क्योंकि बिना शस्त्र के शास्त्र की रक्षा नहीं हो सकती, उसकी चर्चा भी संभव नहीं - 'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचर्चा प्रवर्तते।' अतः शाश्वत क्रिया-चक्र के माध्यम से उन्होंने समझाया कि जिस प्रकार सूर्य से अंधकार, हवा से बादल, मोर से साँप, वीर से कायर भागते हैं, वैसे ही देवी द्वारा दानवों का सर्वनाश सुनिश्चित होता है -

भानु ते ज्यों तम, पौन ते यौं घन, मोर से यौं फण त्यों सकुचाने।
सूर से कातर, कूर से चातुर, सिंह से सातुर ऐण डराने।।
सूम से ज्यों जस, व्योम ते ज्यों रस, पूत-कपूत ते वंश यौं हाने।
धर्म से क्रुद्ध ते, ज्यों भ्रम बुद्धि ते, चंडि के युद्ध ते दैत्य पराने।।

देवी के रूप-लावण्य का जिस प्रकार उन्होंने आलंकारिक चित्रण किया, उससे भी लगता है कि कलम के धनी होने मात्र से ऐसा चित्र उपस्थित नहीं हो सकता, जिसमें जीवन के शौर्य, पराक्रम का व्यावहारिक सौंदर्यबोध अप्रतिम विश्वसनीयता तथा सजीव रूप में अंगीभूत हो। यमक अलंकार के अनूठे उपयोग द्वारा उन्होंने चंडी का स्तुतिगान किया है, जिसमें एक हरि शब्द का दसियों बार प्रयोग है और हर बार उसका अर्थ बदलता गया है। देवी का मुख चंद्रमा के समान दुख-ताप का हरण करने वाला है, उनकी अलकों की शोभा शिव की सर्पमाला की श्री को मंद कर देती है, नेत्र कमल के समान राग-विराग से मुक्त हैं, भौंहें मेघमालिका की तरह और बरौनियाँ यमदण्ड के समान अचूक हैं। सिंह की तरह चाल है, उनकी तेजस्विता सूर्य के तेज को फीका कर देने वाली है। इसी प्रभामंडल के कारण श्रीहरि विष्णु भी वशीभूत हैं और इस आभा के सामने कामदेव मलिन लगते हैं -

हरि सों मुख है हरती दुख है अलकें हरहार प्रभा हरनी है।
लोचन हैं हरि से सर से हरि से भरुटे हरि सी बरुनी है।।
केहरि सो करहा चलबो हरि पै हरि की हरनी तरुनी है।
नित है कर मै हरि पै हरि सौ हरि रूप किये हर की घरनी है।।

बहरहाल, गुरु गोविंद सिंह ने युद्धक्षेत्र में ही नहीं, बल्कि अन्यान्य क्षेत्रों में संघर्ष किया। धर्म के अतिरिक्त समाज, संस्कृति, राजनीति, दर्शन के स्तर पर गहराई से छानबीन की। योद्धा एवं धर्मोपदेशक के संयोजक के तौर पर सैन्य संगठन किया, जनसाधारण को चेतनशील बनाकर जनक्रांति का आह्वान किया। वे स्वयं योद्धा, संत, कवि तो थे ही; साथ ही उन्होंने अनेक चिंतक-कवियों को आश्रय दिया और उनके माध्यम से काव्यात्मक एवं अनूदित कार्य संपन्न करवाया। सामाजिक कुरीतियों, पाखंडों, बाह्याडंबरों का विरोध करते हुए अहंकार एवं द्वैतवाद पर प्रहार किया और जातिवाद का भरपूर खंडन किया - 'जाणहु जोति न पूछहु जाति।' एकेश्वरवाद का महिमा-मंडन करते हुए सर्वव्यापी परमेश्वर को सबका कारण, कार्य और उद्धारकर्ता माना -

करुणालय हैं, अरिघालय हैं। खल खंडन हैं, महि मंडन हैं।।
जगतेश्वर हैं, परमेश्वर हैं। कलि कारन हैं, सर्वउबारन हैं।।

गुरु गोविंद सिंह की अधिकांश लड़ाइयाँ मुगलों या उनके सहयोगियों के विरुद्ध थीं, पर उनकी सदाशयता काबिलेगौर है कि 'गुरु ग्रंथ साहिब' में सच्चा मुसलमान और सच्चा ब्राह्मण कैसा होना चाहिए - इसे निर्लिप्त भाव से सही रूप में इंगित किया गया और सबमें समन्वय, समता व एकता पर जोर दिया गया। इसी सांस्कारिक पृष्ठभूमि के कारण युद्ध में उन्होंने जहाँ-जहाँ विजय प्राप्त की, वहाँ-वहाँ विजय-पताका को धर्म-पताका के रूप में अधिष्ठित कर मानवता का सच्चा संदेश दिया, मानवमात्र को धर्म मार्ग की ओर प्रवृत्त कराने का अथक यत्न किया; न किसी को डराना उनका अभिप्रेत था और न किसी से डरना - 'भय काहू को देत नहि, नहि भय मानत आन।'